Inspira- Journal of Modern Management & Entrepreneurship (JMME)
ISSN : 2231–167X (Print), Impact Factor: (Cosmos: 7.866 & I2OR: 5.675) Volume 16, No. 01(II), January-March, 2026, pp. 34-48

पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास में जनजातियों की भूमिका

राम खिलाड़ी मीना*

सहायक आचार्य – अर्थशास्त्र, स्व. पं. न. कि. श. राजकीय महाविद्यालय, दौसा, राजस्थान।

*Corresponding Author: rkbarwal143@gmail.com

Citation: *मीना, राम. (2026). पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास में जनजातियों की भूमिका. Journal of Modern Management & Entrepreneurship, 16(01(II)), 34–48.*

सार

पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास के संदर्भ में जनजातीय समुदायों की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि ये समुदाय प्रकृति के साथ गहरे सामंजस्य में जीवन व्यतीत करते हैं। उनके जीवन का प्रत्येक पक्ष जैसे – आवास, भोजन, आजीविका, औषधि और संस्कृति दृ प्रत्यक्ष रूप से प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित होता है। जनजातियाँ पारंपरिक ज्ञान और जीवनशैली के माध्यम से संसाधनों का ऐसा प्रबंधन करती हैं, जिससे पारिस्थितिकी तंत्र की स्थिरता बनी रहती है और जैव विविधता का संरक्षण सुनिश्चित होता है। आधुनिक विकास की दौड़ में जहाँ पर्यावरणीय संतुलन बिगड़ रहा है, वहीं जनजातीय समुदाय सदियों से ऐसे व्यवहारों का पालन करते आ रहे हैं जो प्रकृति के साथ सामंजस्य को बनाए रखते हैं। यह अध्ययन राजस्थान राज्य के परिप्रेक्ष्य में जनजातीय समुदायों की पारंपरिक पर्यावरणीय प्रथाओं, उनकी स्थानीय पारिस्थितिकी के संरक्षण में भूमिका, और सतत विकास के लिए उनके योगदान का विश्लेषण करता है। राजस्थान के प्रमुख जनजातीय समूहों जैसे – भील, मीणा, गरासिया, और सहरिया की आजीविका कृषि, वनोपज, पशुपालन और प्राकृतिक जलस्रोतों पर आधारित होती है। ये समुदाय जल संचयन की पारंपरिक पद्धतियाँ अपनाते हैं, जैसे – जोहड़, बावड़ी और तालाब, जो जल संकट से निपटने में कारगर हैं। इसके अलावा वे वनों से औषधीय पौधों का संरक्षण करते हैं और सीमित तथा आवश्यकता–आधारित संसाधन उपयोग की नीति अपनाते हैं। जनजातियाँ प्राकृतिक आपदाओं और जलवायु परिवर्तन के प्रति अधिक संवेदनशील होती हैं, लेकिन इनसे निपटने के उनके पारंपरिक उपाय आज भी प्रभावी हैं। वे जैव विविधता की रक्षा करते हुए स्थानीय बीजों और फसलों को सहेजते हैं। साथ ही, यह अध्ययन इस बात पर भी प्रकाश डालता है कि सरकारी योजनाएँ जैसे – वन अधिकार अधिनियम, जनजातीय कल्याण कार्यक्रम, और पर्यावरणीय परियोजनाएं दृ जनजातियों की सक्रिय भागीदारी के बिना सफल नहीं हो सकतीं। उनके पारंपरिक ज्ञान को दस्तावेजीकृत कर नीति–निर्माण में शामिल करना आवश्यक है। अंततः, जनजातियाँ केवल पर्यावरण के उपभोक्ता नहीं, बल्कि उसके रक्षक भी हैं। उनके ज्ञान, व्यवहार और जीवनशैली में पर्यावरणीय संतुलन का दर्शन समाहित है, जिसे अपनाकर सतत और समावेशी विकास की ओर अग्रसर हुआ जा सकता है।

शब्दकोशः *जनजातियाँ, पर्यावरण संरक्षण, सतत विकास, प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन, पारिस्थितिकी तंत्र, जलवायु परिवर्तन।*

* *Copyright © 2026 by Author's and Licensed by Inspira. This is an open access article distributed under the Creative Commons Attribution License which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work properly cited.*

प्रस्तावना

आज के युग में जब मानवता पर्यावरणीय संकट और जलवायु परिवर्तन की गंभीर चुनौतियों का सामना कर रही है, तब प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और सतत विकास की दिशा में नवीन समाधानों की खोज अत्यंत आवश्यक हो गई है। इस संदर्भ में जनजातीय समुदायों की पारंपरिक जीवनशैली और पर्यावरण संरक्षण की प्रथाएं एक महत्वपूर्ण मार्गदर्शक के रूप में उभरकर सामने आती हैं (बर्केस, 2012)। विशेष रूप से राजस्थान राज्य के जनजातीय समुदाय, जो सदियों से प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण जीवन जीते आए हैं, आधुनिक पर्यावरणीय चुनौतियों के समाधान में अमूल्य योगदान दे सकते हैं (गुप्ता एवं खातून, 2022)।

पर्यावरण संकट और जलवायु परिवर्तन की समस्या आज वैश्विक स्तर पर चिंता का विषय बनी हुई है। औद्योगिक क्रांति के बाद से मानवीय गतिविधियों ने प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन किया है, जिसके परिणामस्वरूप पारिस्थितिकी तंत्र का संतुलन बिगड़ गया है (IPCC, 2021)। वैश्विक तापमान में निरंतर वृद्धि, समुद्री जल स्तर में बढ़ोतरी, चरम मौसमी घटनाओं में वृद्धि, और जैव विविधता का तीव्र क्षरण इस संकट के प्रमुख लक्षण हैं। कार्बन डाइऑक्साइड का स्तर 415 पीपीएम तक पहुंच गया है, जो पिछले तीन मिलियन वर्षों में सर्वाधिक है (NOAA, 2023)। वैश्विक तापमान में 1.1 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि हुई है, जिसके कारण ध्रुवीय बर्फ का पिघलना, मौसमी पैटर्न में परिवर्तन, और प्राकृतिक आपदाओं की आवृत्ति में वृद्धि हो रही है (IPCC, 2021)।

भारत जैसे – विकासशील देश में यह समस्या और भी गंभीर रूप धारण करती है, जहाँ कृषि आधारित अर्थव्यवस्था और बड़ी जनसंख्या जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के प्रति अत्यधिक संवेदनशील है (पटेल , 2018)। प्रतिवर्ष लगभग 2.5 करोड़ लोग प्राकृतिक आपदाओं से प्रभावित होते हैं, जिनमें से अधिकांश ग्रामीण और जनजातीय क्षेत्रों से आते हैं (भारत सरकार, 2020)। इस पृष्ठभूमि में सतत विकास की अवधारणा को अपनाना आवश्यक हो गया है, जिसमें प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, प्रदूषण नियंत्रण, और हरित प्रौद्योगिकी का विकास शामिल है (संयुक्त राष्ट्र, 2015)।

इस गंभीर स्थिति में जनजातीय समुदायों का महत्व और भी बढ़ जाता है। विश्व की कुल जनसंख्या का मात्र पांच प्रतिशत हिस्सा जनजातीय समुदायों से आता है, लेकिन ये समुदाय पृथ्वी की अस्सी प्रतिशत जैव विविधता के संरक्षक हैं (बर्केस, 2012)। भारत में 705 जनजातीय समूह हैं, जो देश की कुल जनसंख्या का 8.6 प्रतिशत हैं और 24 प्रतिशत भौगोलिक क्षेत्र में निवास करते हैं (Census of India, 2011)। राजस्थान में जनजातीय जनसंख्या 92 लाख है, जो राज्य की कुल जनसंख्या का 13.5 प्रतिशत है (राजस्थान सरकार, 2020)।

जनजातीय समुदायों की जीवनशैली प्रकृति के साथ गहरे सामंजस्य में आधारित होती है। उनके पारंपरिक ज्ञान में जल संरक्षण, वन प्रबंधन, जैव विविधता संरक्षण, और प्राकृतिक आपदाओं से निपटने की तकनीकें समाहित हैं (Gadgil & Guḥ, 1992)। वे सामुदायिक वन प्रबंधन, पवित्र वनों की रक्षा, और पारंपरिक कृषि पद्धतियों के माध्यम से पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखते हैं (मुखोपाध्याय और रॉय, 2015)। उदाहरण के लिए, राजस्थान के विश्नोई समुदाय द्वारा वृक्षों और वन्यजीवों की रक्षा, भील समुदाय द्वारा जल संरक्षण तकनीकें, और मीणा समुदाय द्वारा पारंपरिक कृषि पद्धतियाँ पर्यावरण संरक्षण के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

जनजातीय समुदायों की पारंपरिक पारिस्थितिकी ज्ञान प्रणाली में सामुदायिक संसाधन प्रबंधन, चक्रीय उपयोग, जैव विविधता संरक्षण, और पारिस्थितिकी संतुलन की विशेषताएं निहित हैं (वर्मा, 2005)। वे प्राकृतिक संसाधनों को सामुदायिक संपत्ति मानते हैं और उनके उपयोग के लिए सामूहिक नियम बनाते हैं। संसाधनों का चक्रीय उपयोग करते हैं, जिससे प्राकृतिक पुनर्जनन की प्रक्रिया बनी रहती है (FAO, 2001)। जनजातीय क्षेत्रों में स्थानीय प्रजातियों का संरक्षण, बीज संरक्षण, और पारंपरिक किस्मों का रखरखाव होता है। उनकी गतिविधियाँ पारिस्थितिकी तंत्र के संतुलन को बनाए रखने में सहायक होती हैं (सिंह , 2021)।

इस शोध का मुख्य उद्देश्य राजस्थान के जनजातीय समुदायों की पारंपरिक पर्यावरणीय प्रथाओं का विश्लेषण करना है और यह समझना है कि वे पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास में किस प्रकार योगदान देते हैं। वर्तमान पर्यावरणीय संकट और जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों के संदर्भ में जनजातीय ज्ञान और व्यवहार की प्रासंगिकता को उजागर करना इस अध्ययन का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य है।

आधुनिक विकास की दौड़ में पर्यावरणीय संतुलन बिगड़ने के साथ–साथ जनजातीय समुदायों के पारंपरिक ज्ञान और जीवनशैली का भी क्षरण हो रहा है। विकास परियोजनाओं, भूमि अधिग्रहण, और आधुनिकीकरण के दबाव में जनजातीय समुदायों की पर्यावरण संरक्षण की पारंपरिक प्रथाएं लुप्त होती जा रही हैं। इसके साथ ही, नीति निर्माण में जनजातीय समुदायों की भागीदारी और उनके पारंपरिक ज्ञान का समावेश अपर्याप्त है। इस स्थिति में यह आवश्यक है कि जनजातीय समुदायों की पर्यावरण संरक्षण में भूमिका को समझा जाए और उनके योगदान को सतत विकास की नीतियों में शामिल किया जाए।

इस शोध के प्रमुख उद्देश्यों में राजस्थान की प्रमुख जनजातियों की पारंपरिक पर्यावरण संरक्षण प्रथाओं का व्यापक दस्तावेजीकरण करना शामिल है। इसमें जल संरक्षण, वन प्रबंधन, कृषि पद्धतियाँ, और जैव विविधता संरक्षण की तकनीकें शामिल हैं (शर्मा , 2010)। जनजातीय समुदायों के पर्यावरणीय ज्ञान और उनके सतत संसाधन प्रबंधन के तरीकों का गहन विश्लेषण करना भी इस अध्ययन का महत्वपूर्ण उद्देश्य है। यह समझना कि उनकी पारंपरिक प्रथाएं कैसे पारिस्थितिकी तंत्र की स्थिरता में योगदान देती हैं (गुप्ता , 2015)।

जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के प्रति जनजातीय समुदायों की संवेदनशीलता और उनकी अनुकूलन रणनीतियों का अध्ययन करना भी इस शोध का एक महत्वपूर्ण घटक है। यह जानना कि वे कैसे पारंपरिक तकनीकों के माध्यम से जलवायु परिवर्तन से निपटते हैं (पटेल , 2018)। सरकारी नीतियों और योजनाओं का जनजातीय समुदायों पर प्रभाव और उनकी भागीदारी का मूल्यांकन करना भी आवश्यक है। वन अधिकार अधिनियम, पर्यावरणीय नीतियों, और विकास योजनाओं के क्रियान्वयन में जनजातीय समुदायों की स्थिति का विश्लेषण करना इस अध्ययन का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू है (भारत सरकार, 2006)।

यह अध्ययन मुख्य रूप से राजस्थान राज्य के जनजातीय बहुल क्षेत्रों पर केंद्रित है, जहाँ भील, मीणा, गरासिया, सहरिया, डामोर, और काठोड़ी जैसी प्रमुख जनजातियाँ निवास करती हैं। भौगोलिक दृष्टि से राजस्थान के जनजातीय बहुल जिले जैसे – उदयपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, राजसमंद, सिरोही, दौसा, बारां, और झालावाड़ इस अध्ययन के मुख्य क्षेत्र हैं। सामुदायिक दृष्टि से भील, मीणा, गरासिया, सहरिया, डामोर, और काठोड़ी जनजातियों पर विशेष ध्यान दिया गया है। विषयगत दायरे में पारंपरिक पर्यावरण संरक्षण प्रथाएं, जल संरक्षण, वन प्रबंधन, कृषि पद्धतियाँ, जैव विविधता संरक्षण, जलवायु अनुकूलन, और सतत विकास में योगदान शामिल हैं।

अध्ययन की कुछ सीमाएं भी हैं। डेटा संग्रह की सीमाओं में यह तथ्य शामिल है कि अध्ययन में प्राथमिक डेटा संग्रह शामिल नहीं है, बल्कि यह द्वितीयक स्रोतों जैसे – सरकारी रिपोर्ट, जनगणना डेटा, शोध पत्रिकाओं, और नीति दस्तावेजों पर आधारित है (अग्रवाल और नारायण, 1997)। संसाधन और समय की सीमाएं, भाषा और संवाद की बाधाएं, सामाजिक–आर्थिक जटिलताएं, तकनीकी सीमाएं, और क्षेत्रीय विविधता भी इस अध्ययन की सीमाओं में शामिल हैं।

फिर भी, यह अध्ययन राजस्थान के जनजातीय समुदायों की पर्यावरण संरक्षण में भूमिका को समझने और नीति निर्माण के लिए उपयोगी सिफारिशें प्रदान करने में सहायक होगा। यह अध्ययन भविष्य के शोधकर्ताओं के लिए एक आधार प्रदान करेगा और जनजातीय समुदायों के पारंपरिक ज्ञान को संरक्षित करने में योगदान देगा।

यह शोधपत्र एक व्यवस्थित संरचना में प्रस्तुत किया गया है जो प्रस्तावना से शुरू होकर साहित्य समीक्षा, अनुसंधान पद्धति, राजस्थान की प्रमुख जनजातियों का विवरण, पारंपरिक पर्यावरण संरक्षण प्रथाओं का

विश्लेषण, सतत विकास में जनजातीय योगदान, जलवायु परिवर्तन और अनुकूलन रणनीतियों, सरकारी नीतियों और कानूनी ढांचे, केस स्टडीज, चुनौतियों और समस्याओं, नीति सुझाव और सिफारिशों, भविष्य की संभावनाओं, और निष्कर्ष तक विस्तृत है। प्रत्येक अध्याय का अपना विशिष्ट उद्देश्य है और सभी मिलकर एक संपूर्ण चित्र प्रस्तुत करते हैं।

इस प्रकार, यह शोधपत्र न केवल राजस्थान के जनजातीय समुदायों की पर्यावरण संरक्षण में भूमिका को उजागर करता है, बल्कि सतत विकास की दिशा में उनके अमूल्य योगदान को भी रेखांकित करता है। यह अध्ययन नीति निर्माताओं, शोधकर्ताओं, और विकास कार्यकर्ताओं के लिए एक महत्वपूर्ण संदर्भ सामग्री के रूप में काम करेगा और जनजातीय समुदायों के पारंपरिक ज्ञान को संरक्षित करने तथा उसे आधुनिक सतत विकास रणनीतियों में शामिल करने की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करेगा।

साहित्य समीक्षा

जनजातीय समुदाय और पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में व्यापक साहित्य उपलब्ध है, जो इन समुदायों की पारंपरिक जीवनशैली और पर्यावरणीय प्रथाओं के महत्व को रेखांकित करता है। यह साहित्य समीक्षा जनजातीय–पर्यावरण संबंधों के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य से प्रारंभ होकर समसामयिक अनुसंधान और सैद्धांतिक ढांचों तक विस्तृत है।

भारत में जनजातीय समुदाय और पर्यावरण के बीच गहरा ऐतिहासिक संबंध रहा है। आदिवासी समुदाय पर्यावरण को केवल संसाधनों का भंडार नहीं, बल्कि अपने जीवन का अभिन्न अंग मानते हैं। उनकी जीवनशैली और सांस्कृतिक मूल्य भौगोलिक विशेषताओं से प्रभावित होकर पर्यावरण संरक्षण की दिशा में विशिष्ट रूप धारण करते हैं (त्रिबल एनवायरनमेंटल, 2025)। आदिवासी समुदाय प्राचीन समय से प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण तथा सौहार्दपूर्ण संबंध बनाए रखा है। वे अपनी जीवनशैली एवं मानवीय गतिविधियों को इस प्रकार प्रबंधित करते हैं जिससे पर्यावरण को कम से कम हानि पहुंचे। उनकी जीवनशैली निर्वाह प्रधान है न कि संग्रह प्रधान (त्रिबल एनवायरनमेंटल, 2025)।

औपनिवेशिक काल में वन नीतियों के कारण जनजातीय समुदायों के पारंपरिक अधिकारों का हनन हुआ, जिससे उनके पर्यावरणीय संरक्षण के प्रयास प्रभावित हुए (एक्जॉटिक इंडिया आर्ट, 2024)। 1980 के दशक से भारत के पर्यावरणीय इतिहास पर आधारभूत अध्ययन शुरू हुए, जिनमें औपनिवेशिक नीतियों के कारण पर्यावरणीय संसाधनों की महत्वपूर्ण क्षति और जनजातीय आंदोलनों पर केंद्रित अनुसंधान शामिल थे। जनजातीय इतिहास और पर्यावरणीय इतिहास के बीच संबंध को समझने के लिए यह स्पष्ट हुआ कि जनजातीय विरोध आंदोलन मुख्यतः औपनिवेशिक वन और भूमि कानूनों के विरुद्ध थे (एक्जॉटिक इंडिया आर्ट, 2024)।

आदिवासी समुदायों की पारंपरिक ज्ञान प्रणाली में वन उपज एवं वन उत्पादन पर समस्त जीव–जंतुओं का अधिकार स्वीकार करने की परंपरा है। जैसा कि आदिवासी महिला जंगल में फल तोड़ते समय कहती है कि "सारे फल तुम लोग ही खाओगे या पशु–पक्षियों के लिए भी कुछ छोड़ोगे?" यह दर्शाता है कि आदिवासी परंपरागत ज्ञान प्रगतिशील एवं संधारणीय पर्यावरण को बनाए रखने हेतु आवश्यक है (त्रिबल एनवायरनमेंटल, 2025)।

राष्ट्रीय स्तर पर जनजातीय समुदायों और पर्यावरण संरक्षण पर अनेक महत्वपूर्ण अध्ययन किए गए हैं। राजस्थान के आदिवासी समुदायों की पारंपरिक प्रथाओं को संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास मंच में मान्यता मिली है, जहाँ उनके समाधानों को सतत विकास लक्ष्यों की प्राप्ति में महत्वपूर्ण माना गया है (संयुक्त राष्ट्र, 2024)। संयुक्त राष्ट्र आर्थिक एवं सामाजिक परिषद (ECOSOC) के तत्वावधान में आयोजित फोरम में विशेषज्ञों ने जैव विविधता और पारिस्थितिकी तंत्र के संदर्भ में स्वदेशी समुदायों को उनके समाधानों के लिए मान्यता देने के महत्व को रेखांकित किया।

बांसवाड़ा स्थित स्वैच्छिक समूह वाग्धारा के सचिव जयेश जोशी ने बताया कि प्राकृतिक और समुदाय–केंद्रित दृष्टिकोणों के प्रति श्रद्धा में निहित स्वदेशी प्रथाएँ स्थिरता और रेसिलिएंस को बढ़ावा दे सकती हैं। उन्होंने कहा कि स्वदेशी समाधान न केवल अपनी ज़रूरतों को पूरा करते हैं बल्कि व्यापक स्थिरता लक्ष्यों में भी योगदान देते हैं (संयुक्त राष्ट्र, 2024)।

मध्य प्रदेश के मालवा क्षेत्र में भील, भिलाला और बरेला जनजातियों पर किए गए अध्ययन में छह मुख्य संरक्षण प्रथाओं की पहचान की गई हैः हलमा, इंदल, वृक्ष गोद लेना, मातावन, औषधीय पौधे और वर्जना (देहरादून लॉ रिव्यू, 2025)। इन जनजातीय समूहों द्वारा संपूर्ण संरक्षण का दृष्टिकोण अपनाया जाता है, जो पर्यावरण को भूमि, जल, वन आदि के टुकड़ों में न देखकर समग्र रूप से देखता है।

राजस्थान में बांसवाड़ा, डूंगरपुर, प्रतापगढ़ और उदयपुर जिलों के आदिवासियों ने जल, जंगल, जमीन और बीज जैसे – महत्वपूर्ण तत्वों को बचाने के लिए सामूहिक प्रयास किए हैं। फोरम में जिन आदिवासियों की सर्वोत्तम गतिविधियों पर प्रकाश डाला गया, उनमें स्थानीय बीजों का उत्पादन, स्रोत पर जल संरक्षण, कृषि में पशुओं का उपयोग, मिश्रित फसल के माध्यम से मिट्टी के कटाव को रोकना और पोषण सुरक्षा के लिए बिना खेती वाले खाद्य पदार्थों का उपयोग शामिल है (संयुक्त राष्ट्र, 2024)।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर, वैश्विक पर्यावरण सुविधा (GEF) के अध्ययन में पाया गया कि भारत की इकोडेवलपमेंट परियोजना में प्रभावित जनसंख्या का अधिकांश हिस्सा जनजातीय समुदायों का था, परन्तु उनके मुद्दों पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया (समता इंडिया, 2004)। डॉ. राहुल बलदेवभाई जोशी के अनुसार, स्वदेशी पर्यावरणीय ज्ञान (IEK) सतत विकास को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारत में स्वदेशी समुदायों की गहन बुद्धिमत्ता और समय–परीक्षित प्रथाएं समसामयिक पर्यावरणीय चुनौतियों के समाधान में महत्वपूर्ण हैं (जोशी, 2021)।

पारंपरिक पारिस्थितिकी ज्ञान (TEK) एक संचयी ज्ञान प्रणाली है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी सांस्कृतिक संचरण के माध्यम से विकसित होती है। यह सतत संसाधन प्रबंधन, जैव विविधता संरक्षण, और जलवायु परिवर्तन अनुकूलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है (विकिपीडिया, 2009)। स्वदेशी पर्यावरणीय ज्ञान की जड़ें स्वदेशी संस्कृतियों की ज्ञानमीमांसीय उत्पत्ति में गहरी हैं, जो प्राकृतिक दुनिया को समझने और उसके साथ बातचीत करने का एक गहन तरीका प्रस्तुत करती है। इसके मूल में, IEK एक ऐसे विश्व दृष्टिकोण पर आधारित है जो सभी जीवित प्राणियों और उनके पर्यावरण की परस्पर संबद्धता को पहचानता है (जोशी, 2021)।

स्वदेशी समुदाय प्रकृति को शोषण के लिए एक संसाधन के रूप में नहीं देखते, बल्कि रिश्तों के एक जटिल जाल के रूप में देखते हैं जो जीवन को बनाए रखता है। यह अनुभाग IEK को रेखांकित करने वाले मौलिक सिद्धांतों पर प्रकाश डालता है, जिसमें पारस्परिकता, सभी जीवन रूपों के लिए सम्मान, और पर्यावरणीय संरक्षण के आध्यात्मिक आयाम जैसी अवधारणाएं शामिल हैं (जोशी, 2021)।

सतत विकास सिद्धांत प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और मानव जीवन की गुणवत्ता में सुधार पर केंद्रित है, जिसमें पारंपरिक ज्ञान का समावेश आवश्यक है (उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, 2025)। सतत विकास मानव विकास लक्ष्यों को पूरा करने के लिए संगठित सिद्धांत है, यह प्राकृतिक प्रणालियों द्वारा प्राकृतिक संसाधनों और पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएं प्रदान करने की क्षमता को बनाए रखने पर जोर देता है।

जनजातीय जीवनशैली और सतत विकास के बीच गहरा संबंध है। जनजातीय समुदायों की प्राकृतिक पर्यावरण के प्रति श्रद्धा, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, समुदाय–आधारित निर्णय लेना, अंतर–पीढ़ीगत ज्ञान साझाकरण पर जोर, और जैव विविधता को बढ़ावा देना सतत विकास के मूल सिद्धांतों के अनुकूल है। कुल मिलाकर, जनजातीय जीवनशैली सतत विकास के लिए मूल्यवान सबक प्रदान कर सकती है, विशेष रूप से उच्च स्तर की जैव विविधता वाले क्षेत्रों में।

वैचारिक ढांचा

यह अध्ययन पारिस्थितिकी तंत्र सिद्धांत, सांस्कृतिक लचीलापन, और लचीलापन सिद्धांतों पर आधारित है, जो जनजातीय समुदायों के पर्यावरणीय संरक्षण और सतत विकास में योगदान को समझने के लिए एक समग्र दृष्टिकोण प्रदान करता है (CARI जर्नल्स, 2024)। यह वैचारिक ढांचा निम्नलिखित तत्वों को एकीकृत करता हैः

समग्र दृष्टिकोण के अंतर्गत जनजातीय समुदाय पर्यावरण को समग्र रूप से देखते हैं, न कि खंडित रूप में। सामुदायिक भागीदारी में निर्णय लेने की प्रक्रिया में स्वदेशी समुदायों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करना शामिल है। सांस्कृतिक संरक्षण के तहत पारंपरिक ज्ञान और सांस्कृतिक पहचान का संरक्षण आवश्यक है। बौद्धिक संपदा अधिकार के अंतर्गत जनजातीय समुदायों के बौद्धिक संपदा अधिकारों की सुरक्षा महत्वपूर्ण है। अंतर–सांस्कृतिक सहयोग में पारंपरिक और आधुनिक ज्ञान प्रणालियों के बीच सहयोग को बढ़ावा देना शामिल है।

वन अधिकार अधिनियम 2006 और संबंधित अंतर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय कानूनों के संदर्भ में, स्वदेशी लोगों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र घोषणापत्र 2007, वनों पर अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था 2015, और कुनमिंग–मॉन्ट्रियल वैश्विक जैव विविधता रूपरेखा 2022 जैसे – महत्वपूर्ण दस्तावेज जनजातीय अधिकारों और पर्यावरण संरक्षण के बीच संबंध को मजबूत करते हैं।

यह वैचारिक ढांचा सतत विकास में जनजातीय समुदायों की भूमिका को समझने और उनके योगदान को मुख्यधारा की नीतियों में शामिल करने के लिए एक व्यापक आधार प्रदान करता है। यह ढांचा न केवल पारंपरिक ज्ञान की महत्ता को स्वीकार करता है, बल्कि इसे आधुनिक पर्यावरणीय चुनौतियों के समाधान में एक आवश्यक घटक के रूप में प्रस्तुत करता है।

पारंपरिक पर्यावरण संरक्षण प्रथाएँः अतीत से वर्तमान तक की निरंतरता

राजस्थान की जनजातियों द्वारा अपनाई गई पारंपरिक पर्यावरण संरक्षण प्रथाएं न केवल उनकी सांस्कृतिक विरासत का प्रतीक हैं, बल्कि आधुनिक पर्यावरणीय चुनौतियों के लिए भी प्रभावी समाधान प्रदान करती हैं। ये प्रथाएं सदियों के अनुभव और प्राकृतिक संसाधनों के साथ सामंजस्यपूर्ण जीवन जीने की गहरी समझ पर आधारित हैं। इन समुदायों ने अपने पूर्वजों से प्राप्त ज्ञान को न केवल संरक्षित रखा है, बल्कि समसामयिक चुनौतियों के अनुकूल इसे विकसित भी किया है।

राजस्थान की जनजातियों ने सदियों से जल संकट से निपटने के लिए अनूठी तकनीकें विकसित की हैं। इन समुदायों के पूर्वजों ने प्राकृतिक भूगोल और जलवायु पैटर्न का गहन अध्ययन करके जल संरक्षण की विधियां विकसित कीं। नाड़ी, खड़ीन, टांका, बावड़ी और जोहड़ जैसी संरचनाएं उनकी इंजीनियरिंग कुशलता और पर्यावरणीय समझ का प्रमाण हैं।

15वीं सदी में जैसलमेर के पालीवाल ब्राह्मणों द्वारा खड़ीन तकनीक की शुरुआत की गई, जो आज भी उतनी ही प्रभावी है। इस तकनीक में ढाल वाली भूमि के नीचे दो तरफ पाल उठाकर और तीसरी ओर पत्थर की दीवार बनाकर पानी रोका जाता है। आज भी जैसलमेर में 650 से अधिक खड़ीन हैं, हालांकि वर्तमान में सभी कार्यशील नहीं हैं (मोंगाबे इंडिया, 2023)। स्थानीय किसान इस प्राचीन तकनीक का उपयोग करके गेहूं, चना, सरसों और सब्जियों की खेती करते हैं।

आज की पीढ़ी इन पारंपरिक तकनीकों को आधुनिक आवश्यकताओं के अनुकूल बनाकर उपयोग कर रही है। स्वजलधारा कार्यक्रम के अंतर्गत जयपुर जिले के गांवों में सामुदायिक प्रबंधन के माध्यम से पेयजल आपूर्ति की गई है, जहाँ पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक तकनीक का संयोजन देखने को मिलता है (IRC वॉश, 2015)। युवा पीढ़ी अपने बुजुर्गों से सीखकर इन तकनीकों को न केवल बनाए रख रही है, बल्कि उन्हें और भी कुशल बना रही है।

राजस्थान की जनजातियों में ओरण (पवित्र उपवन) की परंपरा सदियों पुरानी है। ये समुदाय प्राचीन काल से ही वन क्षेत्रों को देवताओं को समर्पित करके उनकी सुरक्षा करते आए हैं। पश्चिमी राजस्थान में व्यावहारिक रूप से हर गांव में प्राकृतिक वनस्पति का एक टुकड़ा था जो किसी मंदिर या स्थानीय देवता के धार्मिक दान से जुड़ा होता था। इनमें पेड़ों की कटाई और जानवरों की चराई प्रतिबंधित थी।

केसर छांटा परंपरा में दक्षिणी राजस्थान के ग्रामीण जब किसी वन क्षेत्र को सुरक्षा प्रदान करने का निर्णय लेते हैं, तो वे मंदिर से केसर एकत्रित करते हैं और एक निर्धारित तिथि पर ढोल की आवाज के साथ घोषणा करते हैं। फिर गांव का समुदाय एक निश्चित स्थान पर एकत्रित होकर उस वन क्षेत्र में जाता है जिसे कटाई और अन्य हानिकारक गतिविधियों से बचाना है (USVV, 2023)।

18 दिसंबर, 2024 को सुप्रीम कोर्ट ने राजस्थान सरकार को सभी जिलों में पवित्र उपवनों का सर्वेक्षण पूरा कर उन्हें अधिसूचित करने का निर्देश दिया है, जो इन पारंपरिक संरक्षण प्रथाओं की आधुनिक मान्यता का प्रमाण है (डाउन टू अर्थ, 2024)।

राजस्थान की जनजातियों ने सदियों से मिश्रित खेती, कृषि वानिकी और जैविक तकनीकों का उपयोग किया है। उनके पूर्वजों ने मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने और पर्यावरणीय संतुलन को सुरक्षित रखने के लिए विशिष्ट तकनीकें विकसित कीं। पोडू कृषि प्रणाली में 7–12 वर्षों के चक्र में खेतों का रोटेशन करके पूर्ण वन पुनर्जनन की अनुमति दी जाती है (बानोट्स, 2025)।

समसामयिक अनुप्रयोग और वैश्विक मान्यता

आज भी ये समुदाय अपनी पारंपरिक कृषि प्रथाओं को बनाए रखे हुए हैं। खाद्य और कृषि संगठन (FAO) ने बांसवाड़ा, डूंगरपुर और प्रतापगढ़ में जनजातियों की कृषि प्रथाओं को मान्यता दी है जो मिट्टी के स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचाए बिना की जाती हैं। संयुक्त राष्ट्र द्वारा वित्त पोषित FAO ने इन उपायों को संसाधनों की कमी वाले क्षेत्रों के लिए नवाचार और टिकाऊ पाया है (टाइम्स ऑफ इंडिया, 2022)।

वागधारा संस्था ने सहभागी शिक्षा और कार्रवाई (PLA) के माध्यम से पारंपरिक पोषण–संवेदनशील कृषि प्रथाओं का दस्तावेजीकरण किया है जो समय के साथ खो रही थीं। उन्होंने मिट्टी के स्वास्थ्य और मिट्टी की जैव विविधता पर क्षेत्रीय भाषा में जानकारी वीडियो बनाए हैं (टाइम्स ऑफ इंडिया, 2022)।

आज की युवा पीढ़ी इन पारंपरिक तकनीकों को सीखकर उन्हें आधुनिक चुनौतियों के अनुकूल बना रही है। वे छाछ का छिड़काव, गुड़ का घोल और तरल खाद जैसी जैविक तकनीकों का उपयोग कर रहे हैं। कृषि वानिकी में खेजड़ी और बबूल जैसे – पेड़ों का प्रभुत्व है, जो चरने वाले जानवरों को छाया और पोषक तत्व प्रदान करते हैं (ग्रो बिलियन ट्रीज, 2025)।

राजस्थान की जनजातियों में औषधीय पौधों का उपयोग सदियों पुरानी परंपरा है। इन समुदायों के पास विभिन्न प्रकार के चिकित्सक होते थेः घरेलू उपचार के विशेषज्ञ, अनुष्ठान इलाज चिकित्सक (भोपा), हर्बलिस्ट (जांगर/जांकर), नब्ज या नाडू (पल्स) विशेषज्ञ, अनाज भविष्यवक्ता (देवला), पुजारी (खूंट), और दाइयां। ये समुदाय उस क्षेत्र के पौधों और औषधीय जड़ी–बूटियों से अच्छी तरह वाकिफ थे जिनका वे बीमारी के दौरान घरेलू उपचार बनाने में व्यापक उपयोग करते थे (केआरई पब्लिशर्स, 2002)।

आज भी ये समुदाय अपनी पारंपरिक चिकित्सा प्रणाली को बनाए रखे हुए हैं। राजस्थान सरकार द्वारा घर–घर औषधि योजना के अंतर्गत औषधीय पौधों की पौधशालाएं विकसित की गई हैं। इस योजना से राजस्थान में पाई जाने वाली वनौषधियों एवं औषधीय पौधों का संरक्षण भी हो रहा है (राज टीचर्स, 2021)।

राजस्थान राज्य जैव विविधता बोर्ड की स्थापना 14 सितंबर 2010 को की गई थी, जो राज्य भर में जैव विविधता की निगरानी और संरक्षण के लिए कार्य करता है। बोर्ड जागरूकता बनाने, जैव विविधता मूल्यांकन

करने और संरक्षण के लिए प्रासंगिक कानूनी ढांचे के कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए जिम्मेदार है (सार्थी आईएएस, 2024)।

आज की पीढ़ी अपने बुजुर्गों से पारंपरिक औषधीय ज्ञान सीख रही है और इसे आधुनिक वैज्ञानिक समझ के साथ जोड़ रही है। सुंदरबन मैंग्रोव वन क्षेत्र में किए गए एक अध्ययन में पाया गया कि स्थानीय जनजातीय लोग और हर्बलिस्ट आज भी पारंपरिक औषधीय पौधों का व्यापक उपयोग कर रहे हैं (बायोटेक एशिया, 2019)।

राजस्थान की जनजातियों की पारंपरिक पर्यावरण संरक्षण प्रथाएं आज भी उतनी ही प्रासंगिक हैं जितनी सदियों पहले थीं। इन समुदायों ने अपने पूर्वजों से प्राप्त ज्ञान को न केवल संरक्षित रखा है, बल्कि समसामयिक चुनौतियों के अनुकूल इसे विकसित भी किया है। आज की पीढ़ी इन पारंपरिक प्रथाओं को आधुनिक तकनीकों के साथ जोड़कर और भी प्रभावी बना रही है। यह निरंतरता इस बात का प्रमाण है कि पारंपरिक ज्ञान केवल अतीत की विरासत नहीं है, बल्कि भविष्य के लिए एक मार्गदर्शक भी है।

सतत विकास में जनजातीय योगदान

जनजातीय समुदायों का सतत विकास में योगदान बहुआयामी और गहरा है। ये समुदाय न केवल अपनी पारंपरिक जीवनशैली के माध्यम से सतत विकास के सिद्धांतों का पालन करते हैं, बल्कि आधुनिक विकास मॉडल के लिए भी महत्वपूर्ण दिशा प्रदान करते हैं। राजस्थान के जनजातीय समुदायों का सतत विकास में योगदान आर्थिक, सामाजिक और पर्यावरणीय तीनों आयामों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

राजस्थान की जनजातियों का आर्थिक योगदान उनकी पारंपरिक आजीविका प्रणालियों और प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन में निहित है। भारत के आर्थिक विकास में जनजाति समाज का भरपूर योगदान रहा है, क्योंकि इन्होंने सदियों से वनों की देखभाल करते हुए प्राकृतिक संसाधनों का सतत उपयोग किया है (प्रभासाक्षी, 2024)। जनजाति समाज ने कृषि कार्य के लिए सर्वप्रथम जंगलों को काटकर जलाया, भूमि साफ कर इसे कृषि योग्य बनाया और पशुपालन को प्रोत्साहन दिया (प्रभासाक्षी, 2024)।

आज भी जनजातीय समुदाय अपनी आजीविका के लिए वनों में उत्पन्न होने वाली विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उपयोग करते हैं। शुरुआती दौर में तो जनजाति समाज इन वनस्पतियों एवं उत्पादों का उपयोग केवल स्वयं की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही करते रहे हैं परंतु हाल ही के समय में इन वनस्पतियों का उपयोग व्यावसायिक रूप से भी किया जाने लगा है (प्रभासाक्षी, 2024)। 85 से अधिक लघु वन उत्पादों को न्यूनतम उचित मूल्य (एमएफपी) में शामिल किया गया है, जिससे जनजातीय समुदायों की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है (डीडी न्यूज, 2024)।

राजस्थान के जनजातीय समुदायों ने वन आधारित उद्यमिता में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। हस्तशिल्प, जैविक उत्पादन, शहद उत्पादन और गैर–काष्ठ वन उत्पादों का संग्रह उनकी मुख्य आर्थिक गतिविधियां हैं। केंद्र सरकार ने जनजातीय विकास को सुनिश्चित करने के लिए पिछले 6 सालों के दौरान यानी 2019–20 से 2024–25 के बजट आवंटन में एसटीसी निधि के तहत 5,17,000 करोड़ रूपये से कई अधिक का आवंटन किया गया (डीडी न्यूज, 2024)।

जनजातीय समुदायों की सामाजिक संरचना सतत विकास के सामाजिक आयाम को मजबूत बनाती है। ये समुदाय सामूहिक निर्णय लेने की परंपरा का पालन करते हैं, जो सामाजिक सतत विकास में सहायक है। जनजातीय संस्कृति एवं सतत विकास के संदर्भ में यह महत्वपूर्ण है कि परम्परा एवं आधुनिकता के संगम एवं सन्तुलन बनाए रखने से ही सतत विकास संभव है (दिव्य हिमाचल, 2023)।

जनजातीय समुदायों में महिलाओं की भूमिका विशेष रूप से उल्लेखनीय है। महिला संघों ने सामाजिक समानता के लिए अनुकूल स्थितियाँ पैदा की हैं और अंततः ग्राम स्वराज का मार्ग प्रशस्त किया है (द्रिष्टि

आईएएस, 2021)। महिला संघ महिलाओं को सशक्त बनाते हैं और उनमें नेतृत्त्व कौशल का विकास करते हैं। सशक्त महिलाएँ विकास प्रक्रियाओं, ग्राम सभाओं और स्थानीय चुनावों में अधिक सक्रिय रूप से भाग लेती हैं (द्रिष्टि आईएएस, 2021)।

पारंपरिक ज्ञान का स्थानांतरण भी जनजातीय समुदायों की एक महत्वपूर्ण सामाजिक विशेषता है। जनजातीय जीवन शैली एकला संस्कृति, संस्कृति कर्मियों पर शोध कार्य होने के साथ लिखित रूप तथा तकनीक के प्रयोग से वीडियोग्राफी से दस्तावेजीकरण होना चाहिए (दिव्य हिमाचल, 2023)। सतत एवं समग्र विकास के सार्वभौमिकता के सिद्धांत के अनुसार व्यक्तियों, समुदायों, गांवों, शहरों का सम्पूर्ण विकास होना आवश्यक है ताकि 'कोई पीछे न छूटे' का लक्ष्य प्राप्त हो सके (दिव्य हिमाचल, 2023)।

जनजातीय समुदायों की पर्यावरणीय स्थिरता में भूमिका सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। वैश्विक चुनौतियों के लिये जनजातीय समुदाय समाधान प्रदान करते हैं। न्यूयॉर्क स्थित संयुक्त राष्ट्र मुख्यालय में सतत् विकास पर आयोजित उच्च स्तरीय राजनीतिक फोरम (HLPF) में वैश्विक चुनौतियों से निपटने के लिये राजस्थान के स्थानिक जनजातीय समुदायों के समाधान और नीतिगत भागीदारी पर प्रकाश डाला गया।

जनजातीय समुदायों की पारंपरिक प्रथाओं ने उनकी समृद्ध प्राकृतिक विरासत के संरक्षण में योगदान दिया है। प्राकृतिक और समुदाय–केंद्रित दृष्टिकोणों के प्रति विश्वास पर आधारित स्थानिक प्रथाएँ स्थिरता तथा लचीलेपन को बढ़ावा दे सकती हैं (द्रिष्टि आईएएस, 2024)। स्वराज के सिद्धांतों (संप्रभुता) से प्रेरित होकर, जनजातीय समुदायों की जीवनशैली और सांस्कृतिक मूल्यों ने आत्मनिर्भरता को बढ़ावा दिया है, बाहरी स्रोतों पर निर्भरता कम की है तथा कृषि पद्धतियों में सुधार किया है।

जैव विविधता संरक्षण में स्वदेशी समुदायों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। पारंपरिक ज्ञान का संरक्षण, समुदाय द्वारा संचालित वन संरक्षण, बीज संरक्षण और वन्यजीवों के साथ सह–अस्तित्व उनकी मुख्य विशेषताएं हैं (द्रिष्टि आईएएस, 2025)। उदाहरण के लिए, बिश्नोई समुदाय (राजस्थान) खेजड़ी वृक्ष और काले हिरण जैसे – वन्यजीवों की रक्षा के लिए जाना जाता है (द्रिष्टि आईएएस, 2025)।

जनजातीय समुदायों की प्रथाएं संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) के साथ गहरे रूप से जुड़ी हुई हैं। फोरम में जिन जनजातियों की सर्वोत्तम प्रथाओं पर प्रकाश डाला गया, उनमें स्थानीय बीजों का उत्पादन, स्रोत पर जल संरक्षण, कृषि में पशुओं का उपयोग, मिश्रित फसलों के माध्यम से मृदा अपरदन को रोकना तथा पोषण सुरक्षा के लिए बिना कृषि वाले खाद्यान्न का उपयोग शामिल थे (द्रिष्टि आईएएस, 2024)।

इन प्रथाओं ने जनजातीय समुदायों को बाज़ार पर अपनी निर्भरता कम करने और वर्ष 2020–21 में कोविड–19 महामारी सहित कठिन दौर के दौरान जीवित रहने में मदद की है (द्रिष्टि आईएएस, 2024)। जनजातीय समुदायों की पारंपरिक प्रथाएँ न केवल उनकी आकांक्षाओं को पूरा करेंगी, उन्हें सतत् और लचीले समाधान प्रदान करेंगी, बल्कि गरीबी, असमानता और सुभेद्यता के मुद्दों को हल करने में भी मदद करेंगी (द्रिष्टि आईएएस, 2024)।

सतत् विकास लक्ष्यों का स्थानीयकरण महिला संघों और पंचायती राज व्यवस्था का लाभ उठाकर किया जा सकता है। महिला संघ वित्तीय समावेशन के दायरे का विस्तार करते हुए समाज के निर्धनतम तबके तक पहुँच बनाते हैं (द्रिष्टि आईएएस, 2021)। वित्तीय समावेशन के विस्तार के साथ बाल मृत्यु दर में कमी, मातृ स्वास्थ्य में सुधार और बेहतर पोषण, आवास एवं स्वास्थ्य के साथ रोगों से लड़ सकने की निर्धनों की क्षमता में वृद्धि जैसे – सकल परिणाम प्राप्त होते हैं (द्रिष्टि आईएएस, 2021)।

जनजातीय समुदायों का सामुदायिक आधारित संसाधन प्रबंधन सतत विकास का एक आदर्श मॉडल है। सामुदायिक वन संसाधन (CFR) अधिकार इसका एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। वन अधिकार अधिनियम 2006 के

तहत कुल भूमि कवरेज 2023–24 तक तीन गुना बढ़कर 181 लाख एकड़ हो गई है, जबकि 2013–14 में यह 55 लाख एकड़ थी (डीडी न्यूज, 2024)।

सामुदायिक वन संसाधन सामान्य वन भूमि है जिसे किसी विशेष समुदाय द्वारा स्थायी उपयोग के लिये पारंपरिक रूप से सुरक्षित और संरक्षित किया जाता है (द्रिष्टि आईएएस, 2022)। जनजातीय समुदाय इसका उपयोग गाँव की पारंपरिक और प्रथागत सीमा के भीतर उपलब्ध संसाधनों तक पहुँच एवं ग्रामीण समुदायों के मामले में परिदृश्य के मौसमी उपयोग के लिये करते हैं (द्रिष्टि आईएएस, 2022)।

CFR अधिकार ग्राम सभा को सामुदायिक वन संसाधन सीमा के भीतर वन संरक्षण और प्रबंधन की स्थानीय पारंपरिक प्रथाओं को अपनाने का अधिकार देते हैं (द्रिष्टि आईएएस, 2022)। यह वनों की स्थिरता और जैवविविधता के संरक्षण में वनवासियों की अभिन्न भूमिका को भी रेखांकित करता है (द्रिष्टि आईएएस, 2022)।

पीएम आदि आदर्श ग्राम योजना के तहत 14,000 से अधिक स्वीकृत ग्रामीण विकास योजनाओं के लिए 2216 करोड़ रुपये से अधिक पिछले 3 वर्षों में जारी किए गए हैं (डीडी न्यूज, 2024)। यह योजना सामुदायिक आधारित विकास का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

जनजातीय समुदायों का सतत विकास में योगदान न केवल उनकी पारंपरिक जीवनशैली में निहित है, बल्कि आधुनिक विकास चुनौतियों के समाधान में भी महत्वपूर्ण है। उनके पारंपरिक ज्ञान, सामुदायिक संगठन और पर्यावरणीय प्रथाओं को आधुनिक सतत विकास रणनीतियों में शामिल करना आवश्यक है ताकि एक समावेशी और टिकाऊ भविष्य का निर्माण किया जा सके।

सरकारी नीतियाँ और कानूनी ढांचा

भारत में जनजातीय समुदायों के अधिकारों और कल्याण के लिए एक व्यापक कानूनी और नीतिगत ढांचा विकसित किया गया है। यह ढांचा संविधान के मूलभूत सिद्धांतों पर आधारित है और विभिन्न अधिनियमों, योजनाओं और नीतियों के माध्यम से जनजातीय समुदायों के अधिकारों की सुरक्षा और उनके सामाजिक–आर्थिक विकास को सुनिश्चित करने का प्रयास करता है। हालांकि, इन नीतियों के क्रियान्वयन में अनेक चुनौतियाँ हैं जो जनजातीय समुदायों के वास्तविक कल्याण में बाधक बनती हैं।

वन अधिकार अधिनियम 2006 का विश्लेषण

अनुसूचित जनजाति और अन्य पारंपरिक वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2006, जिसे सामान्यतः वन अधिकार अधिनियम (FRA) के नाम से जाना जाता है, भारतीय जनजातीय कानून में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर है। यह अधिनियम वन निवासी जनजातीय समुदायों और अन्य पारंपरिक वन निवासियों के वन संसाधनों पर अधिकारों को मान्यता देता है, जिन पर ये समुदाय आजीविका, निवास और अन्य सामाजिक–सांस्कृतिक आवश्यकताओं के लिए निर्भर रहे हैं (ट्राइबल.nic.in, 2006)।

वन अधिकार अधिनियम चार प्रकार के अधिकारों को मान्यता देता है। पहला, स्वामित्व अधिकार (Title Rights) जो वन निवासी अनुसूचित जनजातियों और अन्य पारंपरिक वन निवासियों को उस भूमि पर स्वामित्व का अधिकार देता है जिसे वे पीढ़ियों से जोत रहे हैं, अधिकतम 4 हेक्टेयर तक। दूसरा, उपयोग अधिकार (Use Rights) जिसमें लघु वन उत्पादों का संग्रह, चराई के क्षेत्र आदि शामिल हैं। तीसरा, राहत और विकास अधिकार (Relief and Development Rights) जो अवैध निष्कासन या जबरन विस्थापन के मामले में पुनर्वास और बुनियादी सुविधाओं के अधिकार प्रदान करता है। चौथा, वन प्रबंधन अधिकार (Forest Management Rights) जिसमें किसी भी सामुदायिक वन संसाधन की सुरक्षा, पुनर्जनन, संरक्षण या प्रबंधन का अधिकार शामिल है (BYJU'S, 2023)।

अधिनियम के तहत ग्राम सभा को केंद्रीय भूमिका दी गई है। ग्राम सभा समुदायों के दावों को प्राप्त करती है, उन्हें सत्यापित करती है और उप–मंडल स्तरीय समिति को भेजती है। उप–मंडल स्तरीय समिति के

बाद जिला स्तरीय समिति का निर्णय अंतिम और बाध्यकारी होता है। राज्य स्तरीय निगरानी समिति इस पूरी प्रक्रिया की निगरानी करती है।

वन अधिकार अधिनियम ने पहली बार सामुदायिक अधिकारों और सामान्य संपत्ति संसाधनों पर अधिकारों को मान्यता दी है। यह जनजातीय और सीमांत समुदायों के व्यक्तिगत अधिकारों के साथ–साथ अन्य अधिकारों को भी उजागर करता है। अधिनियम के तहत सभी वन गांवों, पुराने आवासों, बिना सर्वेक्षण वाले गांवों और अन्य गांवों को राजस्व गांवों में परिवर्तित करने की बात कही गई है।

हालांकि, अधिनियम के क्रियान्वयन में अनेक चुनौतियाँ हैं। जागरूकता और शिक्षा की कमी के कारण जनजातीय समुदाय अपने अधिकारों से अवगत नहीं हैं। अन्य कानूनों के साथ संघर्ष, जैसे – पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों में विस्तार) अधिनियम, 1996 (PESA) और संयुक्त वन प्रबंधन प्रथाओं के साथ टकराव होता है। जनजातीय मामलों के मंत्रालय में योग्य कर्मचारियों की कमी है जो थ्त्। के प्रावधानों से पूर्णतः अवगत हों। दावों की गलत अस्वीकृति भी एक गंभीर समस्या।

राजस्थान में FRA के क्रियान्वयन की स्थिति चिंताजनक है। आश्चर्यजनक रूप से राजस्थान राज्य में अधिनियम के परिणामस्वरूप लगभग 35,000 दावे प्राप्त हुए हैं जो वास्तविक जमीनी हकीकत से मेल नहीं खाते। इससे पता चलता है कि ग्राम सभाओं और वन अधिकार समितियों के स्तर पर समझ और क्षमताओं की कमी है (डीएलसी इंडियाना, 2009)।

पर्यावरणीय नीतियों का प्रभाव

भारत की पर्यावरणीय नीतियों का जनजातीय समुदायों पर मिश्रित प्रभाव पड़ा है। सकारात्मक प्रभावों में जैव विविधता संरक्षण नीतियाँ शामिल हैं जो जनजातीय समुदायों का समर्थन करती हैं क्योंकि वे इस पर निर्भर हैं। जैव विविधता अधिनियम (2002) पारंपरिक ज्ञान की सुरक्षा करता है और संसाधनों के सतत उपयोग को सुनिश्चित करता है। वन अधिकार अधिनियम जैसी नीतियाँ जनजातीय समुदायों को वन भूमि पर अधिकार प्रदान करती हैं और वन प्रबंधन में उनकी भागीदारी को प्रोत्साहित करती हैं।

संरक्षित क्षेत्रों से विस्थापन एक गंभीर समस्या है। राष्ट्रीय उद्यानों और वन्यजीव अभयारण्यों की स्थापना से जनजातीय समुदायों का निष्कासन होता है। उदाहरण के लिए, मध्य प्रदेश में कान्हा राष्ट्रीय उद्यान की स्थापना से बैगा जनजाति का विस्थापन हुआ। पारंपरिक आजीविका का नुकसान भी एक बड़ी समस्या है। भारतीय वन अधिनियम 1927 शहद और मोम जैसे – गैर–काष्ठ वन उत्पादों के निष्कर्षण को प्रतिबंधित करता है, जिससे कर्नाटक की सोलिगा जैसी जनजातियों की आजीविका प्रभावित होती है।

सांस्कृतिक क्षरण भी एक महत्वपूर्ण चिंता है। सख्त संरक्षण नियम सांस्कृतिक और आध्यात्मिक प्रथाओं को बाधित करते हैं। राजस्थान के सरिस्का टाइगर रिजर्व में वन नियमों ने बावरी जनजाति की पारंपरिक धार्मिक प्रथा में हस्तक्षेप किया है। निर्णय लेने में हाशियाकरण भी एक गंभीर समस्या है जहाँ जनजातीय समुदायों को नीति निर्माण प्रक्रिया से बाहर रखा जाता है (Lukmaan IÂ, 2024)।

कई राज्य सरकारों और न्यायालयों ने वन संरक्षण अधिनियम पर थ्त्। की प्राथमिकता पर सवाल उठाए हैं, जिससे निष्कासन और भूमि दावों से इनकार हुआ है। स्पष्ट कानूनी पदानुक्रम की अनुपस्थिति भ्रम और अन्याय पैदा करती है। एकीकृत कानूनी दृष्टिकोण की अनुपस्थिति का मतलब है कि जबकि कुछ कानून जनजातीय स्वायत्तता को मान्यता देते हैं, अन्य पारिस्थितिक तात्कालिकता के नाम पर इसे कमजोर करते हैं (JLRJS, 2025)।

संविधान के अनुच्छेद 244 और पांचवीं एवं छठी अनुसूची के तहत जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन के लिए विशेष शासन संरचनाएं प्रदान की गई हैं। पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों में विस्तार) अधिनियम, 1996 (PESA) जनजातीय समुदायों के पारंपरिक स्व–शासन प्रणालियों और सामुदायिक संसाधनों की सुरक्षा के अधिकार को

मान्यता देता है। यह अधिनियम ग्राम सभाओं को अपने गांवों के सामाजिक और आर्थिक जीवन को नियंत्रित करने, विकास परियोजनाओं को मंजूरी देने से लेकर स्थानीय बाजारों के प्रबंधन और खनिज निष्कर्षण पर निर्णय लेने तक का अधिकार देता है (EJSSS, 2023)।

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 विशेष रूप से अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के खिलाफ अपराधों को लक्षित करता है और भेदभाव और हिंसा सहित अत्याचारों को रोकने का लक्ष्य रखता है। यह अधिनियम इन हाशिए पर पड़े समूहों के खिलाफ किए गए अत्याचारों की व्यवस्थित प्रकृति को संबोधित करने के लिए एक विशेष कानून की आवश्यकता पर जोर देता है (Bhatt and Joshi Associates, 2024)।

निष्कर्ष के रूप में, भारत में जनजातीय समुदायों के लिए एक व्यापक कानूनी और नीतिगत ढांचा मौजूद है, लेकिन इसके प्रभावी क्रियान्वयन में अनेक चुनौतियाँ हैं। वन अधिकार अधिनियम जैसे – महत्वपूर्ण कानूनों के बावजूद, जमीनी स्तर पर इनका लाभ जनजातीय समुदायों तक पूर्ण रूप से नहीं पहुंच पा रहा है। इसके लिए बेहतर समन्वय, जागरूकता, क्षमता निर्माण और राजनीतिक इच्छाशक्ति की आवश्यकता है ताकि इन नीतियों का वास्तविक लाभ जनजातीय समुदायों तक पहुंच सके।

निष्कर्ष

यह अध्ययन राजस्थान के जनजातीय समुदायों की पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास में भूमिका का व्यापक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अनुसंधान के निष्कर्ष स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि जनजातीय समुदाय न केवल पर्यावरण के संरक्षक हैं, बल्कि वैश्विक पर्यावरणीय चुनौतियों के समाधान में भी महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास मंच में राजस्थान के जनजातीय समुदायों की पहचान वैश्विक चुनौतियों के समाधानकर्ता के रूप में की गई है, जो इस अध्ययन के मुख्य निष्कर्षों को प्रमाणित करता है (वजीरामंद्रवी, 2025)।

अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि राजस्थान की जनजातियों का पारंपरिक ज्ञान आधुनिक पर्यावरणीय चुनौतियों के लिए अत्यंत प्रासंगिक है। भील, मीणा, गरासिया, और सहरिया समुदायों की पारंपरिक प्रथाएं जैसे – जल संरक्षण, वन प्रबंधन, जैविक कृषि और औषधीय पौधों का संरक्षण न केवल स्थानीय पारिस्थितिकी तंत्र की रक्षा करती हैं, बल्कि जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में भी सहायक हैं। संयुक्त राष्ट्र के मंच पर इन समुदायों की सर्वोत्तम प्रथाओं में स्थानीय बीजों का उत्पादन, स्रोत पर जल संरक्षण, कृषि में पशुओं का उपयोग, मिश्रित फसलों के माध्यम से मृदा अपरदन को रोकना और पोषण सुरक्षा के लिए बिना कृषि वाले खाद्यान्न का उपयोग शामिल था।

जनजातीय समुदायों का सतत विकास में योगदान तीनों आयामों – आर्थिक, सामाजिक और पर्यावरणीय – में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। आर्थिक दृष्टि से, ये समुदाय वन आधारित उत्पादों, जैविक कृषि, हस्तशिल्प और पारंपरिक चिकित्सा के माध्यम से आत्मनिर्भर आजीविका का मॉडल प्रस्तुत करते हैं। सामाजिक दृष्टि से, सामुदायिक निर्णय प्रणाली, महिला सशक्तिकरण और अंतर–पीढ़ीगत ज्ञान स्थानांतरण की परंपरा सामाजिक स्थिरता को बढ़ावा देती है। पर्यावरणीय दृष्टि से, जैव विविधता संरक्षण, कार्बन सिक्वेस्ट्रेशन और पारिस्थितिकी तंत्र की स्थिरता में उनका योगदान अतुलनीय है।

अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि जनजातीय समुदाय जलवायु परिवर्तन के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होने के बावजूद, अपनी पारंपरिक तकनीकों के माध्यम से प्रभावी अनुकूलन रणनीतियां विकसित करते हैं। खड़ीन, नाड़ी, टांका जैसी जल संरक्षण तकनीकें, सूखा प्रतिरोधी फसलों की खेती, और मिश्रित कृषि पद्धतियां जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने में सहायक हैं। गुड़ा विश्नोई गांव का उदाहरण दिखाता है कि

कैसे पारंपरिक कृषि पद्धतियां, जल संरक्षण तकनीकें और वन्यजीव संरक्षण एक साथ मिलकर एक संपूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र का निर्माण करते हैं (राजस्थान भूमि भ्रमण, 2024)।

यह अध्ययन स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि राजस्थान के जनजातीय समुदाय पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास के क्षेत्र में अग्रणी हैं। उनकी पारंपरिक जीवनशैली, ज्ञान प्रणाली और सामुदायिक संगठन आधुनिक विश्व के लिए एक मार्गदर्शक मॉडल प्रस्तुत करते हैं। जैसा कि संयुक्त राष्ट्र के मंच पर स्वीकार किया गया है, प्राकृतिक और समुदाय–केंद्रित दृष्टिकोणों के प्रति श्रद्धा में निहित स्वदेशी प्रथाएं स्थिरता और लचीलेपन को बढ़ावा दे सकती हैं, जो संकट के बीच 2030 एजेंडा को मजबूत करने के लिए आवश्यक हैं (वजीरामंद्रवी, 2025)।

हालांकि, इन समुदायों के सामने अनेक चुनौतियां हैं जिनके समाधान के लिए सरकारी नीतियों में सुधार, बेहतर क्रियान्वयन और जनजातीय समुदायों की सक्रिय भागीदारी आवश्यक है। यदि इन चुनौतियों का समाधान किया जा सके तो जनजातीय समुदाय न केवल अपने कल्याण को सुनिश्चित कर सकते हैं, बल्कि वैश्विक पर्यावरणीय संकट के समाधान में भी महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं।

अंततः, यह अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि जनजातीय समुदाय केवल पर्यावरण के उपभोक्ता नहीं हैं, बल्कि वे इसके सच्चे संरक्षक और भविष्य के सतत विकास के वास्तुकार हैं। उनके पारंपरिक ज्ञान, जीवनशैली और मूल्यों में वह दर्शन समाहित है जिसे अपनाकर हम एक सतत, समावेशी और न्यायसंगत भविष्य का निर्माण कर सकते हैं।

नीतिगत निहितार्थ

वन अधिकार अधिनियम 2006 जनजातीय समुदायों के अधिकारों की सुरक्षा में एक महत्वपूर्ण कदम है, लेकिन इसके क्रियान्वयन में अनेक चुनौतियां हैं। राजस्थान में केवल 35,000 दावे प्राप्त हुए हैं, जो वास्तविक आवश्यकता से काफी कम है। यह दर्शाता है कि ग्राम सभाओं और वन अधिकार समितियों के स्तर पर जागरूकता और क्षमता निर्माण की आवश्यकता है।

पर्यावरणीय नीतियों का जनजातीय समुदायों पर मिश्रित प्रभाव पड़ा है। जबकि जैव विविधता संरक्षण नीतियां और वन अधिकार अधिनियम सकारात्मक हैं, संरक्षित क्षेत्रों की स्थापना से विस्थापन और पारंपरिक आजीविका का नुकसान नकारात्मक प्रभाव हैं। इसलिए नीति निर्माण में जनजातीय समुदायों की सक्रिय भागीदारी आवश्यक है।

जनजातीय समुदायों की प्रथाएं संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्यों के साथ स्वाभाविक रूप से जुड़ी हुई हैं। बीज संप्रभुता, मिट्टी संप्रभुता, खाद्य और पोषण संप्रभुता, जल संप्रभुता और सांस्कृतिक संप्रभुता के सिद्धांतों पर आधारित इनकी पहलों ने राज्य के जनजातीय समुदायों को सामूहिक रूप से महत्वपूर्ण चुनौतियों से निपटने में सशक्त बनाया है (वजीरामंद्रवी, 2025)। इन प्रथाओं ने जनजातीय समुदायों को बाजार पर अपनी निर्भरता कम करने और ब्व्टप्क–19 महामारी सहित कठिन दौर के दौरान जीवित रहने में मदद की है।

अनुसंधान का योगदान

यह अध्ययन पारंपरिक पारिस्थितिकी ज्ञान (Traditional Ecological Knowledge) और सतत विकास सिद्धांत के बीच संबंध को स्थापित करता है। यह दर्शाता है कि जनजातीय समुदायों का ज्ञान केवल स्थानीय महत्व का नहीं है, बल्कि वैश्विक पर्यावरणीय चुनौतियों के समाधान में भी महत्वपूर्ण है। अध्ययन यह भी स्थापित करता है कि सामुदायिक आधारित संसाधन प्रबंधन (Community&Based Resource Management) सतत विकास का एक प्रभावी मॉडल है।

अध्ययन नीति निर्माताओं के लिए महत्वपूर्ण दिशा प्रदान करता है। यह दिखाता है कि जनजातीय समुदायों के पारंपरिक ज्ञान को आधुनिक विकास रणनीतियों में कैसे शामिल किया जा सकता है। सतत

जनजातीय पर्यटन का मॉडल भी एक महत्वपूर्ण व्यावहारिक योगदान है, जो सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय स्थिरता के साथ–साथ सुविधाओं और समस्याओं के आयामों का सकारात्मक प्रभाव दिखाता है (JTHSM, 2025)।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मीना, सीताराम. (2021). राजस्थान की जनजातियों का विवेचन. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ क्रिएटिव रिसर्च थॉट्स (आईजेसीआरटी)
2. ट्राइबल.निक.इन. (2006). अनुसूचित जनजाति और अन्य पारंपरिक वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2006. जनजातीय कार्य मंत्रालय, भारत सरकार।
3. गवर्नमेंट ऑफ इंडिया. (2006). द शेड्यूल्ड ट्राइब्स एंड अदर ट्रेडिशनल फॉरेस्ट ड्वेलर्स (रिकॉग्निशन ऑफ फॉरेस्ट राइट्स) एक्ट. मिनिस्ट्री ऑफ ट्राइबल अफेयर्स, नई दिल्ली।
4. गवर्नमेंट ऑफ राजस्थान. (2020). एनुअल रिपोर्ट ऑफ ट्राइबल एरिया डेवलपमेंट डिपार्टमेंट. जयपुर।
5. सेंसस ऑफ इंडिया. (2011). सेंसस रिपोर्ट 2011. गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली।
6. भाषा. (2025, जून 20). अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के लिए प्रतिबद्धता से काम कर रही है राजस्थान सरकार रू मुख्यमंत्री शर्मा. द प्रिंट हिंदी. Retrieved from https://hindi-theprint-in/india/rajasthan-government-is-working-with-commitment-for-the-welfare-of-scheduled-tribes-chief-minister-sharma/832994/
7. द्रिष्टि आईएएस. (2020, दिसंबर 31). जैव विविधता संरक्षण और जनजातीय आबादी. द्रिष्टि आईएएस हिंदी. Retrieved from https://www-drishtiias-com/hindi/daily-updates/daily-news-editorials/biodiversity-conservation-and-indigenous-people
8. द्रिष्टि आईएएस. (2021, सितंबर 21). वन अधिकार अधिनियम. द्रिष्टि आईएएस हिंदी. Retrieved from https://www-drishtiias-com/hindi/daily-news-analysis/forest-rights-act
9. द्रिष्टि आईएएस. (2019, सितंबर 30). जलवायु परिवर्तन.एक वैश्विक चुनौती. द्रिष्टि आईएएस हिंदी. Retrieved from https://www-drishtiias-com/hindi/daily-updates/daily-news-editorials/climate-change-a-global-challenge
10. विकिपीडिया. (2015, मार्च 31). पर्यावरण संरक्षण. Retrieved from https://hi-wikipedia-org/wikiध्पर्यावरण.संरक्षण
11. अग्रवाल, ए., और नारायण, एस. (1997). डाइंग विजडमरू राइज, फॉल एंड पोटेंशियल ऑफ इंडियाज ट्रेडिशनल वाटर हार्वेस्टिंग सिस्टम्स. सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट, नई दिल्ली।
12. बर्केस, एफ. (2012). सेक्रेड इकोलॉजी. राउटलेज, न्यूयॉर्क।
13. बायजूस. (2023). फॉरेस्ट राइट्स एक्ट 2006. Retrieved from https://byjus-com/free-ias-prep/forest-rights-act/
14. गाडगिल, एम., और गुहा, आर. (1992). दिस फिश्ड लैंडरू एन इकोलॉजिकल हिस्ट्री ऑफ इंडिया. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली।
15. गुप्ता, एस.के. (2015). ट्रेडिशनल एग्रिकल्चर एंड एनवायरनमेंटल कंजर्वेशन. जर्नल ऑफ एग्रिकल्चरल साइंसेज, 45(3), 123.135.
16. आईपीसीसी. (2021). क्लाइमेट चेंज 2021रू द फिजिकल साइंस बेसिस. इंटरगवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज।

17. एनओएए. (2023). ग्लोबल मॉनिटरिंग लेबोरेटरी . कार्बन साइकल ग्रीनहाउस गैसेज. नेशनल ओशिएनिक एंड एटमॉस्फेरिक एडमिनिस्ट्रेशन।

18. पटेल, ए.के. (2018). क्लाइमेट चेंज एंड ट्राइबल कम्युनिटीज. एनवायरनमेंटल स्टडीज जर्नल, 12(2), 45.58.

19. शर्मा, पी.सी. (2010). ट्राइब्स ऑफ राजस्थानरू ए स्टडी. राजस्थान स्टेट आर्काइव्स, जयपुर।

20. यूनाइटेड नेशन्स. (2015). सस्टेनेबल डेवलपमेंट गोल्स 2030. न्यूयॉर्क।

21. वर्मा, आर.के. (2005). ट्राइबल कम्युनिटीज एंड एनवायरनमेंटल कंजर्वेशन. राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर।.

❑❑❑